प्रवासी हिन्दी साहित्य

डॉ.स्कन्ध जी पाठक

असिस्टेंट प्रो. जगतपुर पी. जी. कॉलेज

जगतपुर वाराणसी

प्रवासी हिंदी साहित्य विगत दो सौ वर्षों के दौरान भारत से बाहर गये और वहीं पर बसे लोगों का साहित्य है | मॉरिशस,फिजी, सूरीनाम आदि देशों में प्रवास करने वाले भारतीयों की हिंदी भारत की परिनिष्टित खड़ी भोली हिंदी नहीं है | उनकी हिन्दी में भोजपुरी, अवधी आदि बोलियों का अच्छा-खासा प्रभाव है | अलग-अलग देशों में इसका अलग-अलग नाम भी है | "फीजी में यह फीजिषात, सुरीनाम में सरनामी तथा दक्षिण अफ्रीका में नेताली के नाम से जानी जाती है |"[1] लेकिन वस्तुत: वह हिन्दी ही है जो किंचित बदले रूप में |

प्रवासी हिन्दी साहित्यकार अपने साहित्य की रचना स्थानीय हिन्दी में रचते हैं, यही स्थानीय हिंदी उनके परस्पर संवाद का जरिया भी है |भोजपुर और अवध आदि से निकाले गये आधिकांश गिरमिटियों की भाषा में उनकी स्थानीय भाषा की प्रधानता थी | उनकी भाषा का फीजी में वहीं की भाषा का फीजी तथा अंग्रेजी और सूरीनाम में बोली जानेवाली स्नागतोंमो और अन्य दूसरी भाषाओं से मिश्रण हुआ जिसके कारण हिंदी के नये प्रवासी भाषारुपों का उदय हुआ |

प्रवासी भारतियों द्वारा लिखा जा रहा हिंदी साहित्य मुख्यत: भारतीयों के विदेश आगमन,उनके संघर्ष तथा विकास का दस्तावेज कहा जा सकता है | प्रवासी हिंदी साहित्य की मूल संवेदना प्रवासी की पीड़ा है जो साहित्य में आद्यत्न दिखाई पड़ती है | यद्यपि उसका स्वरूप विविध राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों की वजह से परिवर्तित हुआ दिखता है | प्रवास में जहाँ आदमी के मन में एक तरफ नई जगह जाने का उत्साह है, वहीं दूसरी तरफ वियोग की गहरी पीड़ा है, विस्थापन का कष्ट है तथा साथ ही भविष्य की आशंकाएँ हैं |

अपनी जमीन छोड़कर विदेश गया आदमी पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रवासी ही रहता है | उसके अंतर की गहराई में प्रवास की पीड़ा होती है | वह अपनी भाषा, संस्कृति और अपने जीवन-मूल्य को निरन्तर पकड़े रहना चाहता है, कारण यही दुसरे देश में उसकी अपनी पहचान है | नये देश के मूल निवासी कभी भी उसे पूर्णत: स्वीकार नहीं कर पाते |रूप, रंग-भेद ही नहीं, भाषा, खान-पान, आचार-विचार, जीवन-मूल्य, रीति-नीति का भेद विदेश में उसे अलग बनाये रखता है | यही प्रवास का दंश है | प्रवासी अपने को सामान्य से अलग महसूस करता है पर उसकी विवशता है कि उसे रहना वहीं है | यह विवशता उसे नये देश को अपनाने की अपना बनाने की है | यही विवशता प्रवासी साहित्यिक अभिव्यक्ति की मूल चेतना के रूप में भी उभरकर सामने आती है | प्रवासी साहित्यकार भारत को याद करते हुए अपनी आँखों में पानी भर कर कहता है - "वही दिनवा जब याद आवेला अंखिया में

भरेला पानी रे |

हिंदुस्तान से भागकर यही हैं अपनी

कहानी रे |

भाई छूटा, बाप छूटा और छूटी महतारी रे |

अरकटिया खूब भरमवलीस कहें पैसा कमैबू

भर-भर थाली रे |

वही चक्कड़ में पड़ गइली, बचवा याद

आय गइल नानी रे |"[2]

यहाँ पर प्रवासी लेखक की पीड़ा हिंदुस्तान से दूर जाना,सगे-संबंधियों का छूट जाना है | उसे पैसे के लिए यह पीड़ा भोगनी पड़ी | उसका जिक्र वह अपनी कविता में करता है |

प्रवासी रचनाकार को पीड़ा इस बात पर भी है कि वह वहाँ पैदा होकर भी परदेशी ही कहलाता है | यद्यपि वह तन, मन, धन से उसी

देश से संबंधित है, लेकिन वहाँ की सरकार हमें भारतीय कहकर मेरे साथ असमानता का व्यवहार करती है | हमने यहाँ के जंगल को सवॉर कर मंगल विधान रचे हैं| लेकिन हमें दो क्षण के लिए भी आराम नहीं मिलता |वह अपने मन में सोचता है कि पता नहीं हमारा यह कालचक्र अनुकूल होगा | फीजी के राष्ट्र कवि पंडित कमलाप्रसाद मिश्र की कविता 'क्या में परदेशी हूँ' में इसका स्पष्ट चित्रण हुआ है-"घडल सिंधु तट पर मैं बैठा अपना मांस बहलाता

फीजी में पैदा होकर भी में परदेशी कहलाता

यह है गोरी नीति मुझे सब भारतीय अब भी कहते

यद्यपि तन मन धन से मेरा फीजी से ही है नाता

भारत के जीवन से फीजी के जीवन में अंतर है

भारत कितनी दूर वहाँ पर कौन सदा जाता आता

औपनिवेशिक नीति मरल है, नहीं हमें जीने देती

वे उससे ही खुश रहते हैं जो उनका यश है गाता

भारतीय वंशज पग-पग पर पाता है केवल कंटक

जंगल को मंगल करके भी दो अज चैन कहाँ पाता

साहस है हम सब सह लेंगे हम भयभीत नहीं होंगे

पता नहीं कब गति बदलेगा कालचक्र जग का त्राता |"[3]

प्रारंभिक अभिव्यक्ति गिरमिट गीतों के रूप में ही मिलती है | परदेश जाने का कारण सुखद भविष्य की कामना थी | वह विदेश पहुँचते ही घोर निराशा में बदल गई | यह गीत बहुत ही मार्मिक और कारुणिक है जो प्रवासी भारतियों के गिरमिट जीवन के मौखिक साहित्यिक दस्तावेज़ कहे जा सकते हैं |

इसी बात को मॉरिशस के ब्रजेन्द्र कुमार भगत 'मधुकर' अपनी भोजपुरिया कविता में करते हैं –

" सोनवा के लोभवा में देशवा बिसरले हो,

सोना सुन मरीचिया के नाम |

सुनके कि पग-पग सोना अवा सेर ,

मिलि करे के न परी एकौ काम |

खाई के मुफुत मिली मक्खन, मिठाई, मेवा,

पिये खातिर दुधवा बदाम |

नर्म नर्म मिली सुते के गलइचा हों,

परी करी चाकरी सलाम |" [4]

इनके साहित्य में देश-प्रदेस के बीच विभाज्य भाव को देख सकते हैं | एक ऐसा मन जो एक और अपने भारत को लेकर आसक्त है, उसके विद्रोह में आहें भरता हैं तो दूसरी ओर उसके पिछड़े पन पर अश्रुपात करता है | उसके प्रति निरासक्त भाव से प्रेम प्रदर्शित करता है | सुधीश पचैरी के अनुसार प्रवासियों में एक विभक्त भाव होता है, एक ही वक्त में दो दुनियाओं को पुकारता है | एक वह जिसमें डालर कमाने, विदेश पलट होने, अमीर होने के लिए वह परदेस में वह मात्र कष्ट सहता अपनी देश को याद करता रहता है| दूसरा वह जो याद आनेवाले 'देश' के यथार्थ को भी जानता है जिससे ऊबकर वह प्रदेश भागा था! परदेस में उसका देशप्रेम जोर मारता है | और देश में परदेश प्रेम | पूँजीवादी सभ्यता की मारकाट वाली स्पर्धा, हर वक्त की असुरक्षा, अकेलापन उसे डॉलर देती है | कहीं न कहीं सभी प्रवासी अपनी मूल संस्कृति, मूल परम्परा और मानस से स्वभावत: या प्रकृतिजन्य रूप से जुड़े रहते हैं | यह जुड़ा रहना अवसरों, कुअवसरों पर बाहर भी झाँकने लगता है | परम्पराएँ, रीति-रिवाज, लोक-जीवन में रची-बसी आकृतियाँ, मौसम-बेमौसम हमारे व्यवहार, हमारे स्मृति और हमारी पहचान को उकेरती रहती है | भाषा का इस एहसास से बड़ा सीमित सा रिश्ता है | सिर्फ उन लोगों में भाषा इस एहसास का अहम हिस्सा बनती है जो काफी

देर से, परिपक्वास्था में अपना परिवेश छोड़कर यहाँ आ बसे | आधे मन से वह उसमें लगता है लेकिन वह यह भी चाहता हैं कि डॉलर रहे संग में अपना गाँव भी रहे तो मजा है | इस तरह प्रवासी भाव देश-परदेस के बीच विभाज्य भाव है |

प्रवासी भारतीयों के देश यथा मॉरिशस, फीजी, सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका आदि में आज हिंदी की सभी विधओं में पर्याप्त और उत्कृष्ट सृजनात्मक लेखन हो रहा है | अनेक लेखकों की रचनाएँ भारत में प्रकाशित हो रही हैं और हिन्दी साहित्य जगत में उन्होंने अपना स्थान भी बनाया है पर उन देशों में जहाँ रहकर रचनाकार साहित्य लेखन कर रहा है वहाँ न तो भाषा के स्तर पर और न ही साहित्य के स्तर पर हिंदी लेखक को सम्मानित स्थान मिल रहा है जो अपेक्षित है |

प्रवासी भारतीयों ने हिंदी की स्थानीय शैली का विकास किया है | ये प्रवासी हिंदी में कविता, कहानी, निबंध, उपन्यास आदि लिखकर हिंदी को समृद्ध कर रहे हैं | फीजी के कमलाप्रसाद मिश्र, विवेकानंद शर्मा, महावीर मिश्र, ज्ञानी सिहं, मॉरिशस के अभिमन्यु अन्त रामदेव घुर-घर, सुमित बुघन, प्रहलाद रामशरण, ब्रजेन्द्र कुमार भगत 'मधुकर', सूरीनाम के मुंशी रहमान खां, अमरसिंह रमज, सुरजन परोही, त्रिनिदाद की ममता लक्ष्मना, हरिशंकर आदेश, गुयाना के रंडल बूटी सिंह, रामलाल, दक्षिण अफ्रीका के पंडित तुलसी राम पाण्डेय, प्रो.राम भजन सीताराम, उषा देवी शुक्ल, राम विलास, चम्पा वशिष्ठ मुनि आदि हिंदी के प्रसिद्ध प्रवासी लेखक हैं | जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से हिंदी साहित्य-जगत को श्रीसम्पन्न किया है |

प्रवासी भारतीय लेखकों के समक्ष आज कई चुनोतियाँ भी हैं जो यथार्थ में प्रवासी होने के कारण उसके प्रवासी नियति से जुड़ी हैं | प्रवासी भारतीयों की भाषा के संबंध में आज एक बड़ी चुनौती है कि प्रवासी भारतीय हिंदी भाषा बोलने के साथ ही हिंदी को देवनागरी में लिख भी सकें | लिपि के बिना भाषा-ज्ञान अधूरा हैं ही साथ ही वह भाषा

जाननेवाले के अन्तर्मन में आत्मविश्वास भी नहीं जगा पाता | फीजी, सूरीनाम आदि देशों में हिंदी आज भी रोमन लिपि में ही लिखी जाती हैं | यही स्थिति अमरीका, इंगलैंड, जर्मनी आदि देशों में बसे प्रवासी भारतीयों की भी है | जो हिंदी तो बोलते हैं पर देवनागरी के स्थान पर हिंदी रोमन में लिखते हैं |

हिंदी का प्रवासी साहित्य, हिंदी साहित्य का अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप प्रस्तुत करता है | जिस तरह हिंदी में भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद,प्रयोगवाद, अकविता, नई कविता, दलित साहित्य स्त्री-विमर्श आदि का स्वतन्त्र आस्तित्व है | उसी तरह प्रवासी हिंदी साहित्य की भी आज अपनी खास पहचान है | इक्कीसवी शताब्दी की शुरुआत में आधुनिक साहित्य के अन्तर्गत प्रवासी हिंदी साहित्य के नाम से एक नये युग का प्रारंभ हुआ | 'संख्या-बल की दृष्टि से हिंदी आज विश्व की दूसरी प्रधान भाषा है |"[5] तो इसका श्रेय उस विशाल प्रवासी समुदाय को भी जाता है जो भारत से बाहर अन्य देशों में जाकर बसने के बावजूद हिंदी को अपनाये हुए हैं | इन देशों में रचा जा रहा साहित्य, उस देश से हमें परिचित कराता है | साथ ही उनकी भाषा से शब्द भी ग्रहण कर रहा है | परिणामत: हिंदी का भी एक नया स्वरूप विन्यास विकसित हो रहा है जो हिंदी में लिखे जा रहे साहित्य को नये चटकारे से भरता है |

<u>संदर्भ :</u>

1.विमलेश कांति वर्मा : फीजी में हिंदी :स्वरूप और विकास, पीताम्बरा प्रकाशन, नई दिल्ली 2000

2.अमर सिंह रमण (सूरीनाम)- आप्रवासी यादगार (कविता)

3.कमला प्रसाद मिश्र (फीजी)- क्या मैं परदेसी हूँ (कविता)

4.ब्रजेन्द्र कुमार भगत 'मधुकर'-गिरमिट के सपना (कविता)

5.क्रिस्टल डेविड : ड कैंब्रिज इनसाइक्लोपीडियाऑफ लैंग्वेजेज, कैंब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, 1998, पृ.287